

## भूमंडलीकरण और हिन्दी कविता

### सारांश

भूमंडलीकरण की चपेट में आज भारतीय संस्कृति भी है। भूमंडलीकरण ने हमारी प्रकृति, संस्कृति, भाषा, अस्मिता आदि को काफी हद तक प्रभावित किया है। यह हमारे जीवन के तमाम मूल्यों को निरर्थक साबित करने के लिए कुतर्क को स्थापित करती नजर आ रही है। हिन्दी की समकालीन कविता विश्वायन भूमंडलीकरण के विरोध में लड़ाई कर रही है। जो मनुष्य को इस भूमंडलीय कुसंस्कृति से बचाना चाहती है। आज जब कविता को उत्पाद मानकर साहित्य की मार्केटिंग हो रही है, बाजार की माँग के अनुसार इसके सरोकार, शिल्प तथा वस्तु आदि को भी बदला जा रहा है। इसे केवल मनोरंजन का माध्यम यानी रीतिकालिन दरबारी बनाने का साजिस में लगे लोगों के प्रति आज भी कुछ साहित्यकार कविता को बचाने के लिए तत्पर हैं, वे कविता को कान्ता नहीं बनने देना चाहते हैं।

**मुख्य शब्द :** भूमंडलीकरण के चलते मानव संवेदनशील, लोभी, कामुक, दिखावेपन की ओर भागता जा रहा है

### प्रस्तावना

भूमंडलीकरण और उदारीकरण ने वर्तमान समय के साहित्य को हाशिये पर पहुँचा दिया है। भूमंडलीकरण अमेरिकी लूट और झूठ तथा पूँजीवाद के एकछत्र साम्राज्य की स्थापना का नाम है। इसके कारण आज हर चीज बाजार की वस्तु बन गई है और इसने मानव शरीर, पानी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य तक को नहीं बख्शा है। व्यक्ति को आज बाजार की शक्तियाँ निर्देशित कर रही हैं। यह बाजार के तर्कों को संचालित करने वाली व्यवस्था है, जिसमें हर व्यक्ति को उपभोक्ता की नजर से देखा जाता है। भूमंडलीकरण के कारण हमारे परिवेश में भी बदलाव आया है। इसने सबसे अधिक हमारे आत्मीय सम्बन्धों को आहत किया है। आज जीवन में सुख की चाहत और भागमभाग के चलते आत्मीयता लगभग समाप्त हो गई है। भूमंडलीकरण की चमक-दमक में व्यक्ति अपने ग्राम-परिवेश एवं संस्कृति से विमुख हो रहा है। सब जगह बाजारीकरण व्याप्त हो रहा है, जहाँ देखें वहाँ देश समाज, संस्कृति सबका क्रय-विक्रय हो रहा है। पिछले दो-ढाई दशकों पर दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि लोक जीवन पर इसका कितना प्रभाव पड़ा है, इसके पीछे आधुनिकतावादी मीडिया का बहुत बड़ा हाथ है।

बाजार और बाजारवाद या उदारीकरण को लेकर अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के अंतर्गत लुभावने चेहरे के पीछे विकृतियों को उजागर किया है।

पूँजीवाद—भूमंडलीकरण को बहुराष्ट्रीय कंपनियों या उसकी व्यावसायिक गतिविधियों को हम इन कविताओं में देख सकते हैं

“पूरा भूमण्डल स कमरे में है।

कुछ रोशनी हमारे आई.एम.आर के कारण ही इस जगह है।

हमारी थकान कर्ज से भी मिटती है।

अनुदान से भी विदेशी शराब जैसीर निबन्ध उधारी।

काँच के रेशों की तरह का अनुदान जो हल्के—हल्के काटता है।

खून कमरे के बाहर ही टपके

इस रात इसकी पुख्ता इन्तजाम है।

ऐसी ही रातें सौ साल पहले भी थीं

लेकिन तब शायद स्पष्ट पहचान थी।

अब सब कुछ गड़मड़ हो गया है

विभेद डूब गया है।”<sup>1</sup>

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आदमी को ऊँची पगार देकर जाति, धर्म, सांस्कृतिक विशिष्टता, राष्ट्रियता से एकदम अलग कर दिया है। लोगों के मन में अनास्था का विष घोल दिया है—



**रणजीत कुमार सिन्हा**  
हिन्दी विभाग,  
खड़गपुर कालेज इंडा,  
खड़गपुर, पश्चिम बंगाल

“मल्टीनेशनल कम्पनी में बहुत मोटी पगार वाली नौकरी मिलने पर उसने उड़ेली अपनी अनास्थाएँ पूरे जोर-शोर से मैं जाति, धर्म, सांस्कृतिक वैशिष्ट्य राष्ट्रीयता वगैरह को नहीं मानता .... मेरा संयम झुरझुराता लगा मुझे।”<sup>2</sup> बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की चकाचौंध में आदमी दुविधामय स्थिति में आ जाता है। वह अपने ‘स्व’ को अस्मिता को बचाये या उसमें डूब जाए! अजीब-सी –कशमकश है। “मैं किसको मानता हूँ और किसको नहीं मानता आपको पाया अब क्या बताऊँ जब मैं खुद ही इस बात को ठीक से नहीं जानता।”<sup>3</sup>

बाजारवाद ने किस तरह आदमी को यांत्रिक बना दिया है, मनुष्य के मन में उठने वाली ईच्छाओं को किस तरह मार रहा है, देखिए –

“जहाँ रोज की जरूरतों में शामिल है इच्छाओं को मारना। यह पटरी बजार बचाए हुए चीजों को आम आदमी की सोच से लुप्त होने से अभी भी अरहर की दाल में पड़ सकती है कभी बघार एक चम्मच असली घी में भुने हुए जीरे की छौंक.... प्राक्टर एंड गैबल और पेप्सी को बाजार नियन्त्रक सत्ता के बावजूद आम जन की खरीदारी में अभी शामिल है चीजों के रंग और स्वाद।”<sup>4</sup>

महानगरों में पीड़ा की त्रासदी का अहसास हम जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ ‘मृत्यु जैसी खामोशी’, ‘नगर यन्त्रण’, ‘बीसवीं सदी के बाद’ आदि में देखते हैं –

“मुझे दहशत नहीं होती यह सुनकर की एक पूरा मुल्क आग में झुलसा दिया गया। यह तो इस शताब्दी का सत्य है।”<sup>5</sup>

बाजार एक नशा बन चुका है, यानी नशे में रमता है। हमारा वक्त उपभोग एक आतुरता बना है। इसके कारण मनुष्य के मन के सारे पुण्य नष्ट हो गये हैं, कवि वीरेन डंगवाल की “तम्बाकू” शीर्षक कविता इस स्थिति के मद्देनजर वाचनीय है। इसमें हमारे त्रासद वक्त का मूर्तिकरण तम्बाकू प्रतीक के इस्तेमाल से किया है। कवि कहते हैं :-

“चलो तो निकल चलो घर के बाहर।

फुसफुसाता है रक्त में छिपा तम्बाकू।

इसे भी उगाया था

चौड़े पत्तों वाले इस बदमाश को मेहनती हाथों ने।

इतनी लगन और चाव के साथ, खेतों में

हमारे ही हाथों पैदा होते हैं, कई बार।

हमारे दुष्मन प्यारे-प्यारे।”<sup>6</sup>

भूमण्डलीकरण के युग का विकास मात्र गगनचुम्बी इमारतों का ही नहीं, संवेदनशून्यता और क्रूरता का भी है। इस विकास का वास्तविक अर्थ कुछ और है। ज्ञानेन्द्रपति ने एक आदिवासी गाँव की छाती से गुजरती सड़क को राजधानी की एक लुटेरी बाँह के रूप में देखा है –

“चमक पड़ा मर्म। आदिवासी गाँव की छाती से गुजरती सड़क का। हि हमारी शोषण की सभ्यता का। कि जिसकी बाँह राजधानी से, यहाँ तक बह आयी है। लुटेरी बाँह।”<sup>7</sup>

कवि उमाशंकर चौधरी ने बाजारवादी, उपभोक्तावादी, मौकापरस्त दौर में प्रेम को भी बिकाऊ वस्तु बना देने की सच्चाई को यों शब्दबद्ध किया है –

“हर लड़की को वह सिर्फ खेलने और खाने की वस्तु समझता था उनके लिए वह माल शब्द का प्रयोग करता था उन्हें देख सीटी बजाता था पास से गुजरने वाली लड़की के

लिए वह एक लम्बी साँस अन्दर की ओर लेता था ऐसे जैसे वह उसे एक बारगी पी जाना चाहता है।”<sup>8</sup>

वर्तमान समय में देश बाजार के समान लाचार यानी नपुंसक संस्था है। इसके नपुंसकता के कारण आज आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता और अपराध पनप रहे हैं। समकालीन कवि बाजारवाद के द्वारा पनपी घातक विकृतियों से चिंतित और आहत है –

“हत्या, हथियार और हत्यारा अब अण्डर वर्ल्ड से ज्यादा बाजार के शब्द है हत्यारों का भी अब अपना एक बाजार है जहाँ बिकते हैं हत्यारे और खरीदी जाती है मृत्यु जब हत्यारों और हथियारों का चुनाव भी किया जा सकता है।”<sup>9</sup>

कवि कीर्तिनारायण 11 सितम्बर की घटना पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं –

“साएँ में आया नहीं डरावना सपना

दोस्त न लगे दुश्मन

दुश्मन न लगे अपना।

अल्लाह की राह पर आप न भटके

गौड़ आपके गले में न अटके

फिर भी न लगे ग्यारह सितम्बर वाले झटके।”<sup>10</sup>

ग्लोबल गाँव में नष्ट होती ग्राम्य अवधारणा की ओर कवियों ने संकेत दिए हैं। अब गाँव न तो गाँव रह गया है न शहर। कारण गाँव की स्वायत्ता नष्ट हो रही है। रोहित कश्यप अपनी कविता “गाँव से गाँव गायब” में बाजारवादी अपसंस्कृति का चित्रण करते हुए लिखते हैं

कोल्हू का बैल गायब है कोल्हू से गन्ने से गायब है रस गुड़ से वह मिठास गायब है जैसे गायब है बोलचाल से मीठापन गुड़गुड़ाहट से निकलता सहकारिता का संगीत गायब है गायब है नुक्कड़े से पनघर हवा से गायब है शुद्धता गायब है कड़िया छत से जमीन से गोबरी गायब है मिट्टी से गायब है सोंधापन गायब है रोटी और साग से मिट्टी के चूल्हे की गर्माहट चूल्हे के पास परिवार संग मिल बैठ खाने का रिवाज गायब है होने और गायब होने के बीच से जो गायब नहीं होना था वह सब कुछ गायब है। इसलिए तो गाँव से गाँव गायब है।”<sup>11</sup>

बाजारवाद और भूमण्डलीकरण समाज में दुष्परिणाम पैदा करते नजर आ रहे हैं। मनुष्य आज मानवता, करुणा, सहानुभूति, प्रेम, दया, आदि से रहित होता नजर आ रहा है। वर्तमान समय में आदमी एक संवेदनहीन मानव यानी पत्थर बनता जा रहा है। बाजारवाद के चलते, अरुण कमल जी ने समाज से एक सवाल किया है :-

“पेड़ को पत्थर बनने में लगा है हजार वर्ष।

आदमी देखते – देखते पत्थर बन रहा है।

ऐसा क्यों आखिर क्यों हो रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है।”<sup>12</sup>

भूमण्डलीकरण की चमक दमक ने आज पूरे समाज को विचारहीनता और अपसंस्कृति की चपेट में ला खड़ा किया है। विकास के नाम पर जो नंगापन परोसा जा रहा है, वह इस प्रकार देख सकते हैं –

“एक हाथ में पेप्सी-कोला

दूजे में कंडमोम

तीजे में रमपुरिया चाकू

चौथे में हरिओम।

कितना ललित ललाम यार है

भारत छोड़े पर सवार है।”<sup>13</sup>

कला और साहित्य का व्यवसायीकरण होने लगा है। आज मीडिया की अहम भूमिका है। आज समाज में बुद्धिजीवी वर्ग जो कभी प्रतिरोध करता था अब पुरस्कार पाने की लालच में चुप्पी साध लेता है। साहित्यकार भी बाजारू माल बन गया है –

“आज मानवता की कब्र पर

नैतिकता का मुर्दा जलेगा

मित्र! तुम भी आना।

चार कविता सुनाना।

चालिस तालियाँ ले जाना।”<sup>14</sup>

भूमण्डलीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति इस्तेमाल करो और फेंको ( Use and Throw) वाली है। आज यह मनुष्यों की भी निर्यात बन गई है। कवि अनिमेश की भाषा में –“आज पूरा समाज भूमिगत दृश्य पर केवल असामाजिक राजक अराजक सिपाई और बलवाई।”

बाजारवाद के चलते ध्वस्त होती मानसिकता के चित्र को हम प्रेमरंजन अनिमेश की कविता में देखते हैं

“ थोड़े ही समय में लगने लगता

आना आसान है, बाजार में

लेकिन टिकना बड़ा कठिन भैया

खड़ा रहा इसी तरह तो कोई हटा देगा।

या मुझ पर अपना इशितहार लगा देगा।”<sup>15</sup>

### निष्कर्ष

भूमण्डलीकरण वस्तुतः आर्थिक जगत में पनपने वाला जंगल राज है। यह समाज में आर्थिक स्वरूप के अनुरूप वर्गभेद, विषमता, वर्ग-संघर्ष, कटुता, शत्रुता पैदा कर रहा है। भौतिकतावादी सभ्यता का विकास कर रहा है। इसका मुख्य लक्ष्य ही भौतिक सुख का भोग है। कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को बचाने के लिए जनता को समझाने के लिए सच्चाई से अवगत कराने के लिए प्रतिरोध जताया है। बाजारवाद आज मानवता के जमीर और संवेदना को खत्म करने पर तुला है। वर्तमान कवियों ने इस संक्रामक रोग से बचने का उपाय अपनी कविताओं में बताया है। कवियों ने आम जनता को जाग्रत करने का प्रयास किया है।

### संदर्भ ग्रंथ

1. पंकज राज : यह भूमण्ड की रात है : तद्भव, जुलाई, 2001, पृ.-219
2. हरजेन्द्र चौधरी : मैं पुत्र, समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी – फरवरी – 2010, पृ. –82
3. पंकज राज : यह भूमण्ड की रात है : तद्भव, जुलाई, 2001
4. मदन केशरी : वैश्विक बाजार में लुप्त होने से पहले पटरी बाजार का एक शब्द चित्र, तद्भव- जुलाई, 2001, पृ. –121।
5. जगदीश चतुर्वेदी की 25 कविताएँ, अनुभूति चतुर्वेदी : 2008, पल्लवी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. वीरेन डंगवाल:दुश्चक्र में सृष्टा,राजकमल प्रकाशन,पृ.-58।
7. ज्ञानेन्द्रपति संशयात्मा, पृ. –21।
8. विनय कुलश्रेष्ठ : आधुनिक बाजारवाद और लेखकीय संकट : मधुमति, अंक : अप्रैल, 2007, पृ. – 99 ।
9. देवीप्रसाद मिश्र:आलोचना,जुलाई-सितम्बर,1998,पृ.- 8।

10. विनय विश्वास : आज की हिन्दी कविता, पृ. 33।

11. रोहित कश्यप – ‘गाँव से गाँव गायब’।

12. अरुण कमल : सबूत, पृ.-59।

13. आलोचना –2000, अप्रैल-जून, पृ.-191।

14. अनन्त भटनागर: चार कविताएँ : नवंबर 2005, पृ.-37।

15. बाजार में इंतजार: वागर्थ, नवम्बर अंक, 2005, पृ.

–37।